प्राचीन भारतीय साहित्य में विदेशियों के प्रति प्रतिक्रिया और उसका ऐतिहासिक मूंल्याकन

डॉ0 श्वेता गुप्ता

प्राचीन भारतीय साहित्य में विदेशियों के प्रति भारतीयों मनीषियों और विद्वानों ने समय–समय पर अपने विचार प्रकट किये है। विदेशी धर्म अथवा परधर्म का ग्रहण करना अनुचित बतलाया गया है। स्वधर्म, जाति, संस्कृति को ही श्रेष्ठ माना गया है। भगवान श्री कृष्ण ने भी गीता में कहा है कि ''भलीभांति अनुष्ठान किये गये, परधर्म की अपेक्षा, गुणरहित भी अनुष्ठान किया गया अपना धर्म कल्याणकर है। परधर्म स्थित पुरूष के जीवन की अपेक्षा स्वधर्म में स्थित पुरूष का मरण भी श्रेष्ठ है, क्योंकि दूर का धर्म भयदायक है–अर्थात नरक देने वाला है।'' यही कारण था कि विदेशी जातियों, उनके धर्मों के प्रति भारतीयों में वह आदर–सम्मान नहीं आ पाया, जो अपनी भारतीय संस्कृति के प्रति था। यह बात केवल भारतीयों के लिए ही नहीं आरोपित होती है, वरन् संसार के सभी प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों की, अपने देशवासियों से यही अपेक्षा होती है कि वह अपने धर्म का परित्याग न करें। इसी कारण भारत में समय–समय पर आये इन विदेशियों को 'म्लेच्छ' कहकर उनसे पृथक रहने की सलाह लगभग सभी प्राचीन भारतीय साहित्य में की गयी है।